इस्लाम में ख़ालिस इन्सानी अधिकार

[**हिन्दी** – Hindi – هندي]

साइट इस्लाम धर्म

संपादनः **अताउर्रहमान ज़ियाउल्लाह**

2014 - 1435

IslamHouse.com

﴿حقوق الإنسان الأصيلة في الإسلام﴾

« باللغة الهندية »

موقع دين الإسلام

مراجعة: عطاء الرحمن ضياء الله

2014 - 1435

IslamHouse.com

بِسۡمِ ٱللَّهِ ٱلرَّحۡمَٰنِ ٱلرَّحِيمِ

बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

मैं अति मेहरबान और दयालु अल्लाह के नाम से आरम्भ करता हूँ।

إن الحمد لله نحمده ونستعينه ونستغفره، ونعوذ بالله من شرور أنفسنا، وسيئات أعمالنا، من يهده الله فلا مضل له، ومن يضلل فلا هادي له، وبعد:

हर प्रकार की हम्द व सना (प्रशंसा और गुणगान) केवल अल्लाह के लिए योग्य है, हम उसी की प्रशंसा करते हैं, उसी से मदद मांगते और उसी से क्षमा याचना करते हैं, तथा हम अपने नफ्स की बुराई और अपने बुरे कामों से अल्लाह की पनाह में आते हैं, जिसे अल्लाह तआला हिदायत प्रदान कर दे उसे कोई पथभ्रष्ट (गुमराह) करने वाला नहीं, और जिसे गुमराह कर दे उसे कोई हिदायत देने वाला नहीं। हम्द व सना के बाद :

ख़ालिस इन्सानी-अधिकार

इन्सान की हैसियत से इन्सान के अधिकार

सबसे पहली चीज़ जो इस मामले में हमें इस्लाम के अन्दर मिलती है, वह यह है कि इस्लाम इन्सान की हैसियत से इन्सान के कुछ हक़ और अधिकार मुक़र्रर करता है। दूसरे शब्दों में इसका मतलब यह है कि हर इन्सान चाहे, वह हमारे अपने देश और वतन का हो या किसी दूसरे देश और वतन का, हमारी क़ौम का हो या किसी दूसरी

क़ौम का, मुसलमान हो या ग़ैर-मुस्लिम, किसी जंगल का रहने वाला हो या किसी रेगिस्तान में पाया जाता हो, बहरहाल सिर्फ़ इन्सान होने की हैसियत से उसके कुछ हक़ और अधिकार हैं जिनको एक मुसलमान लाज़िमी तौर पर अदा करेगा और उसका फ़र्ज़ है कि वह उन्हें अदा करे।

1. ज़िन्दा रहने का अधिकार

इन में सबसे पहली चीज़ ज़िन्दा रहने का अधिकार और इन्सानी जान के आदर का कर्तव्य है। क़ुरआन में फ़रमाया गया है कि, "जिस आदमी ने किसी एक इन्सान को क़त्ल किया, बग़ैर इसके कि उससे

किसी जान का बदला लेना हो, या वह ज़मीन में फ़साद फैलाने का मुजरिम हो, उसने मानो तमाम इन्सानों को क़त्ल कर दिया'' (५:३२)। जहाँ तक ख़ून का बदला लेने या ज़मीन में फ़साद फैलाने पर सज़ा देने का सवाल है, इसका फैसला एक अदालत ही कर सकती है। या किसी क़ौम से जंग हो तो एक बाक़ायदा हुकूमत ही इसका फ़ैसला कर सकती है। बहरहाल किसी आदमी को व्यक्तिगत रूप से यह अधिकार नहीं है कि ख़ून का बदला ले या ज़मीन में फ़साद पैलाने की सज़ा दे। इसलिए हर इन्सान पर यह वाजिब है कि वह हरगिज़ किसी इन्सान का क़त्ल न करे। अगर किसी ने एक

इन्सान का क़त्ल किया तो यह ऐसा है जैसे उसने तमाम इन्सानों को क़त्ल कर दिया। इसी बात को दूसरी जगह पर कुरआन में इस तरह दुहराया गया है–

"किसी जान को हक़ के बग़ैर क़त्ल न करो, जिसे अल्लाह ने हराम किया है" (६:१५२)। यहाँ भी क़त्ल की मनाही को ऐसे क़त्ल से अलग किया गया है जो हक़ के साथ हो, और हक़ का फ़ैसला बहरहाल कोई अधिकार रखने वाली अदालत ही करेगी। अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) ने किसी जान के क़त्ल को शिर्क के बाद सबसे बड़ा गुनाह क़रार दिया है। "सबसे बड़ा गुनाह अल्लाह

के साथ शिर्क और किसी इन्सानी जान को क़त्ल करना है।" इन तमाम आयतों और हदीसों में इन्सानी जान ('नफ़्स') का लफ़्ज़ इस्तेमाल किया गया है जो किसी ख़ास इन्सान के लिए नहीं है कि उसका मतलब यह लिया जा सके कि अपनी क़ौम या अपने मुल्क के शहरी, या किसी ख़ास नस्ल, रंग या वतन, या मज़हब के आदमी को क़त्ल न किया जाए। हुक्म तमाम इन्सानों के बारे में है और हर इन्सानी जान को हलाक करना अपने आप में हराम किया गया है।

2. जीने का अधिकार 'इन्सान' को सिर्फ़ इस्लाम ने दिया है:

अब आप देखिए कि जो लोग मानव-अधिकारों का नाम लेते हैं, उन्होंने अगर अपने संविधानों में या एलानों में कहीं मानव-अधिकारों का ज़िक्र किया है तो इसमें यह बात निहित (Implied) होती है कि यह हक़ या तो उनके अपने नागरिकों के हैं, या फिर वह उनको किसी एक नस्ल वालों के लिए ख़ास समझते हैं। जिस तरह आस्ट्रेलिया में इन्सानों का शिकार करके सफ़ेद नस्ल वालों के लिए पुराने बाशिन्दों से ज़मीन ख़ाली कराई गई और अमेरिका

में वहाँ के पुराने बाशिन्दों की नस्लकुशी की गई और जो लोग बच गए उनको ख़ास इलाक़ों (Reservations) में क़ैद कर दिया गया और अफ़्रीक़ा के विभिन्न इलाक़ों में घुसकर इन्सानों को जानवरों की तरह हलाक किया गया, यह सारी चीज़ें इस बात को साबित करती हैं कि इन्सानी जान का ''इन्सान'' होने की हैसियत से कोई आदर उनके दिल में नहीं है। अगर कोई आदर है तो अपनी क़ौम या अपने रंग या अपनी नस्ल की बुनियाद पर है। लेकिन इस्लाम तमाम इन्सानों के लिए इस हक़ को तस्लीम करता है। अगर कोई

आदमी जंगली क़बीलों से संबंध रखता है तो उसको भी इस्लाम इन्सान ही समझता है।

3. जान की हिफ़ाज़त का हक़

क़ुरआन की जिस आयत का अर्थ ऊपर पेश किया गया है उसके फ़ौरन बाद यह फ़रमाया गया है कि "और जिसने किसी नफ़्स को बचाया उसने मानो तमाम इन्सानों को ज़िन्दगी बख़्शी।" (५:३२)। आदमी को मौत से बचाने की बेशुमार शक्लें हैं। एक आदमी बीमार या ज़ख़्मी है, यह देखे बग़ैर कि वह किस नस्ल, किस क़ौम या किस रंग का है, अगर वह आप को बीमारी की हालत में या ज़ख़्मी

होने की हालत में मिला है तो आपका काम यह है कि उसकी बीमारी या उसके ज़ख़्म के इलाज की फ़िक्र करें। अगर वह भूख से मर रहा है तो आपका काम यह है कि उसको खिलाएँ ताकि उसकी जान बच जाए। अगर वह डूब रहा है या और किसी तरह से उसकी जान ख़तरे में है तो आपका फ़र्ज़ है कि उसको बचाएँ। आपको यह सुनकर हैरत होगी कि यहूदियों की मज़हबी किताब "तलमूद" में हू-ब-हू इस आयत का मज़मून मौजूद है, मगर उसके शब्द ये हैं कि "जिस ने इस्राईल की एक जान को हलाक किया, अल-किताब (Scripture) की निगाह में उसने मानो सारी दुनिया को हलाक कर दिया और

जिसने इस्राईल की एक जान को बचाया अल-किताब के नज़दीक उसने मानो सारी दुनिया की हिफ़ाज़त की।" तलमूद में यह भी साफ़ लिखा है किः अगर कोई ग़ैर इस्राईल डूब रहा हो और तुमने उसे बचाने की कोशिश की तो गुनहगार होगे। नस्ल परस्ती का करिश्मा देखिये। हम हर इन्सान की जान बचाने को अपना फ़र्ज़ समझते हैं, क्योंकि क़ुरआन ने ऐसा ही हुक्म दिया है। लेकिन वह अगर बचाना ज़रूरी समझते हैं तो सिर्फ बनी-इस्राईल (यहूदियों) की जान को, बाक़ी रहे दूसरे इन्सान, तो यहूदी-दीन में वह इन्सान समझे ही नहीं जाते। उनके यहाँ 'गोयम' जिसके लिए अंग्रेज़ी

में (Gentile) और अरबी में उम्मी का लफ़्ज़ इस्तेमाल किया जाता है, की हैसियत यह है कि उनके कोई इन्सानी अधिकार नहीं हैं। इन्सानी हुक़ूक़ सिर्फ़ बनी-इस्राईल के लिए ख़ास हैं। क़ुरआन में भी इसका ज़िक्र आया है कि यहूदी कहते हैं कि "हमारे ऊपर उम्मियों के बारे में (यानी उनका माल मार खाने में) कोई पकड़ नहीं है" (३:७५)।

4. औरत की आबरू का आदर

तीसरी अहम चीज़ इस्लाम के दिए हुए मानव-अधिकारों में यह है कि औरत के शील और उसकी इज़्ज़त हर हाल में आदर के योग्य है, चाहे औरत

अपनी क़ौम की हो, या दुश्मन क़ौम की, जंगल बियाबान में मिले या फ़तह किए हुए शहर में, हमारी अपने मज़हब की हो या दूसरे मज़हब की, या उसका कोई भी मज़हब हो मुसलमान किसी हाल में भी उस पर हाथ नहीं डाल सकता। उसके लिए बलात्कार (ज़िना) को हर हाल में हराम किया गया है चाहे यह कुकर्म किसी भी औरत से किया जाए। क़ुरआन के शब्द हैं "ज़िना के क़रीब भी न फटको" (१७:३२)। और उसके साथ ही यह भी किया गया है कि इस काम की सज़ा मुक़र्रर कर दी गई। यह हुक्म किसी शर्त के साथ बंधा हुआ नहीं है। औरत के शील और इज़्ज़त पर हाथ डालना हर

हालत में मना है और अगर कोई मुसलमान इस काम को करता है तो वह इसकी सज़ा से नहीं बच सकता, चाहे दुनिया में सज़ा पाए या परलोक में। औरत के सतीत्व के आदर की यह परिकल्पना इस्लाम के सिवा कहीं नहीं पायी जाती। पाश्चात्य फ़ौजों को तो अपने मुल्क में भी "काम वासना की पूर्ति" के लिए ख़ुद अपनी क़ौम की बेटियाँ चाहिए होती हैं। और ग़ैर क़ौम के देश पर उनका क़ब्ज़ा हो जाए तो उस देश की औरतों की जो दुर्गत होती है, वह किसी से छुपी हुई नहीं है। लेकिन मुसलमानों का इतिहास, व्यक्तिगत इन्सानी ग़लतियों के अपवाद (Exceptions) को छोड़कर इससे ख़ाली

रही है कि किसी देश को फ़तह करने के बाद उनकी फ़ौजें हर तरफ़ आम बदकारी करती फिरी हों, या उनके अपने देश में हुकूमत ने उनके लिए बदकारियाँ करने का इन्तिज़ाम किया हो। यह भी एक बड़ी नेमत है जो मानव-जाति को इस्लाम की वजह से हासिल हुई है।

5. हर माँगने वाले और तंगदस्त का यह हक़ है कि उसकी मदद की जाए

क़ुरआन में यह हुक्म दिया गया है कि "और मुसलमानों के मालों में मदद माँगने वाले और महरूम रह जाने वाले का हक़ है" (५:१९)। पहली

बात तो यह कि इस हुक्म में जो शब्द आये हैं वे सबके लिए हैं, उसमें मदद करने को किसी धर्म विशेष के साथ ख़ास नहीं किया गया है, और दूसरे यह कि यह हुक्म मक्के में दिया गया था, जहाँ मुस्लिम समाज का कोई बाक़ायदा अस्तित्व ही नहीं था। और आमतौर पर मुसलमानों का वास्ता ग़ैर-मुस्लिम आबादी ही से होता था। इसलिए क़ुरआन की उक्त आयत का साफ़ मतलब यह है कि मुसलमान के माल पर हर मदद माँगने वाले और हर तंगदस्त और महरूम रह जाने वाले इन्सान का हक़ है। यह हरगिज़ नहीं देखा जाएगा कि वह अपनी क़ौम या अपने देश का है या किसी

दूसरे क़ौम, देश या नस्ल से उसका संबंध है। आप हैसियत और सामर्थ्य रखते हों और कोई ज़रूरतमंद आप से मदद माँगे, या आपको मालूम हो जाए कि वह ज़रूरतमंद है तो आप ज़रूर उसकी मदद करें। ख़ुदा ने आप पर उसका यह हक़ क़ायम कर दिया है।

6. हर इन्सान की आज़ादी का हक़

इस्लाम में किसी आज़ाद इन्सान को पकड़ कर ग़ुलाम बनाना या उसे बेच डालना बिल्कुल हराम क़रार दिया गया है। अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) के साफ़ शब्द ये हैं कि तीन

क़िस्म के लोग हैं जिनके ख़िलाफ़ क़ियामत के दिन मैं ख़ुद मुक़दमा दायर करूँगा। उनमें से एक वह आदमी है, जो किसी आज़ाद इन्सान को पकड़ कर बेचे और उसकी क़ीमत खाए। रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) के इस फ़रमान के शब्द भी आम हैं। उसको किसी क़ौम या नस्ल या देश व वतन के इन्सान के साथ ख़ास नहीं किया गया है। पाश्चात्य लोगों को बड़ा गर्व है कि उन्होंने गुलामी का ख़ात्मा किया है। हालांकि उन्हें यह क़दम उठाने का अवसर मध्य उन्नीसवीं सदी में मिला है। उससे पहले जिस बड़े पैमाने पर वे अफ्रीक़ा से आज़ाद इन्सानों को पकड़-पकड़ कर अपनी नव-आबादियों

में ले जाते रहे हैं और उनके साथ जानवरों से भी बुरा सलूक करते रहे हैं, इसका विवरण उनकी अपनी ही लिखी हुई किताबों में मौजूद है।

7. पाश्चात्य क़ौमों की गुलामसाज़ी

अमेरिका और हिन्द के पश्चिमी जज़ीरों वग़ैरह पर इन क़ौमों का क़ब्ज़ा होने के बाद साढ़े तीन सौ साल तक गुलामी की यह ज़ालिमाना तिजारत जारी रही है। अफ़्रीक़ा के जिस तट पर देश के अन्दर से काले लोगों को पकड़ कर लाया जाता और बन्दरगाहों से उनको आगे भेजा जाता था, इसका नाम गुलामों का तट (Slave Coast) पड़ गया

था। सिर्फ़ एक सदी में (१६८० ई॰ से १७८६ ई॰ तक) सिर्फ़ ब्रिटेन के क़ब्ज़ा किए हुए इलाक़ों के लिए, जितने आदमी पकड़ कर ले जाए गए उनकी तादाद ख़ुद ब्रिटेन के लेखकों ने दो करोड़ बताई है। सिर्फ़ एक साल के बारे में ऐसा बताया गया है (सन् १७९० ई॰) जिसमें पचहत्तर हज़ार अफ़्रीक़ी पकड़े और गुलाम बनाए गए। जिन जहाज़ों में वे लाए जाते थे, उनमें इन अफ़्रीक़ियों को बिल्कुल जानवरों की तरह ठूंस कर बन्द कर दिया जाता था और बहुतों को ज़ंजीरों से बांध दिया जाता था। उनको न ठीक से खाना दिया जाता था, न बीमार पड़ने या ज़ख़्मी हो जाने पर उनके इलाज की फ़िक्र की

जाती थी। पाश्चात्य लेखकों का अपना बयान है कि गुलाम बनाने और ज़बरदस्ती ख़िदमत लेने के लिए जितने अफ़्रीक़ी पकड़े गए थे, उनमें से २० प्रतिशत का रास्ते ही में ख़ात्मा हो गया। यह भी अंदाज़ा किया जाता है कि सामूहिक रूप से विभिन्न पाश्चात्य क़ौमों ने जितने लोगों को पकड़ा था उनकी तादाद दस करोड़ तक पहुंचती थी। इस तादाद में तमाम पाश्चात्य क़ौमों की गुलामसाज़ी के आँकड़े शामिल हैं। ये हैं वे लोग जिनका यह मुंह है कि इस्लाम के अनुयायियों पर गुलामी को जायज़ रखने का रात-दिन इल्ज़ाम लगाते रहे हैं। मानो

नकटा किसी नाक वाले को ताना दे रहा है कि तेरी नाक छोटी है।

8. इस्लाम में गुलामी की हैसियत

यहाँ संक्षेप में समझ लें कि इस्लाम में गुलामी की हैसियत क्या है। अरब में जो लोग इस्लाम से पहले के गुलाम चले आ रहे थे, उनके मामले को इस्लाम ने इस तरह हल किया कि हर मुमकिन तरीक़े से उनको आज़ाद करने की प्रेरणा दी गई। लोगों को हुक्म दिया गया कि अपने कुछ गुनाहों के प्रायश्चित के तौर पर उनको आज़ाद करें। अपनी ख़ुशी से ख़ुद किसी गुलाम को आज़ाद करना एक

बड़ी नेकी का काम क़रार दिया गया। यहाँ तक कहा गया कि आज़ाद करने वाले का हर अंग उस गुलाम के हर अंग के बदले में नरक से बच जाएगा। इसका नतीजा यह हुआ कि ख़िलाफ़ते राशिदा के दौर तक पहुंचते-पहुंचते अरब के तमाम पुराने गुलाम आज़ाद हो गए। (पैग़म्बर मुहम्मद (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) के बाद इस्लामी सिद्धांतों पर आधारित शासन-प्रणाली एक अर्से तक क़ायम रही। यही दौर ख़िलाफ़ते राशिदा का दौर कहलाता है।)

अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) ने ख़ुद ६३ गुलाम आज़ाद किए। हज़रत आइशा

(रज़ियल्लाहु अन्हा) के आज़ाद किए हुए गुलामों की तादाद ६७ थी। हज़रत अब्बास (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) ने ७०, हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-उमर (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) ने एक हज़ार और अब्दुर्रहमान-बिन-औफ़ (रज़ियल्लाहु अन्हु) ने बीस हज़ार गुलाम ख़रीद कर आज़ाद कर दिए। ऐसे ही बहुत से सहाबा (रज़ियल्लाहु अन्हुम) के बारे में रिवायतों में तफ़सील आई है कि उन्होंने ख़ुदा के कितने बन्दों को गुलामी से मुक्त किया था। इस तरह पुराने दौर की गुलामी का मसला बीस-चालीस साल में हल कर दिया गया।

मौजूदा ज़माने में इस मसले का जो हल निश्चित किया गया है, वह यह है कि जंग के बाद दोनों तरफ़ के जंगी क़ैदियों का तबादला कर लिया जाए। मुसलमान इसके लिए पहले से तैयार थे, बल्कि जहाँ कहीं मुख़ालिफ़ पक्ष ने क़ैदियों के तबादले को क़ुबूल किया, वहाँ बग़ैर झिझक इस बात पर अमल किया गया। लेकिन अगर इस ज़माने की किसी लड़ाई में एक हुकूमत पूरे तौर पर हार खा जाए और जीतने वाली ताक़त अपने आदमियों को छुड़ा ले और हारी हुई हुकूमत बाक़ी ही न रहे कि अपने आदमियों को छुड़ा सके तो तजुर्बा यह बताता है कि पराजित क़ौम के क़ैदियों को गुलामी से बदतर

हालत में रखा जाता है। पिछले विश्व युद्ध में रूस ने जर्मनी और जापान के जो क़ैदी पकड़े थे, उनका अंजाम क्या हुआ। उनका आज तक हिसाब नहीं मिला है। कुछ नहीं मालूम कि कितने ज़िन्दा रहे और कितने मर-खप गए। उनसे जो ख़िदमतें ली गईं, वे गुलामी की ख़िदमत से बदतर थीं। शायद फ़िरऔन के ज़माने में अहराम (Pyramids) बनाने के लिए गुलामों से उतनी ज़ालिमाना ख़िदमतें न ली गई होंगी जितनी रूस में साइबेरिया और पिछड़े इलाक़ों को तरक़्क़ी देने के लिए जंगी क़ैदियों से ली गयीं।

9. हर इन्सान का यह हक़ है कि उसके साथ न्याय किया जाए

यह एक बहुत अहम अधिकार है, जो इस्लाम ने इन्सान को इन्सान होने की हैसियत से दिया है। कुरआन में आया है कि "किसी गिरोह की दुश्मनी तुम्हें इतना न भड़का दे कि तुम नामुनासिब ज़्यादती करने लगो" (५:८)। आगे चलकर इसी सिलसिले में फिर फ़रमाया, "और किसी गिरोह की दुश्मनी तुम को इतना उत्तेजित न कर दे कि तुम इन्साफ़ से हट जाओ, इन्साफ़ करो, यही धर्म परायणता से क़रीबतर है" (५:८)। एक और जगह फ़रमाया गया है कि "ऐ लोगो! जो ईमान लाए हो,

इन्साफ़ करने वाले और ख़ुदा के वास्ते गवाह बनो'' (५:८)। मालूम हुआ कि आम इन्सान ही नहीं दुश्मनों तक से इन्साफ़ करना चाहिए। दूसरे शब्दों में इस्लाम जिस इन्साफ़ की दावत देता है, वह सिर्फ़ अपने देश के रहने वालों के लिए या अपनी क़ौम के लोगों के लिए या मुसलमानों के लिए ही नहीं, बल्कि दुनिया भर के सब इन्सानों के लिए है। हम किसी से भी बेइन्साफ़ी नहीं करते, हमारा हमेशा रवैया यह होना चाहिए कि कोई आदमी भी हम से बेइन्साफ़ी का अंदेशा न रखे और हम हर जगह हर आदमी के साथ न्याय और इन्साफ़ का ख़्याल रखें।

10. इन्सानी बराबरी

इस्लाम न सिर्फ़ यह कि किसी रंग व नस्ल के भेदभाव के बग़ैर तमाम इन्सानों के बीच बराबरी को मानता है, बल्कि इसे एक महत्वपूर्ण सत्य नियम क़रार देता है। क़ुरआन में अल्लाह ने फ़रमाया है कि "ऐ इन्सानो! हम ने तुम को 'एक' मां और एक 'बाप' से (अर्थात् आदम और हव्वा से) पैदा किया।" दूसरे शब्दों में, इसका मतलब यह हुआ कि तमाम इन्सान अस्ल में भाई-भाई हैं, एक ही मां और एक ही बाप की औलाद हैं। "और हमने तुम को क़ौमों और क़बीलों में बांट दिया, ताकि तुम एक-दूसरे की पहचान कर सको" (४९:१३)।

यानी क़ौमों और क़बीलों में यह तक़्सीम पहचान के लिए है। इसलिए है कि एक क़बीले या एक क़ौम के लोग आपस में एक-दूसरे से परिचित हों और आपस में सहयोग कर सकें। यह इसलिए नहीं है कि एक क़ौम दूसरी क़ौम पर बड़ाई जताए और उसके साथ घमंड से पेश आए, उसको कमज़ोर और नीचा समझे और उसके अधिकारों पर डाके मारे। "हक़ीक़त में तुम में इज़्ज़त वाला वह है, जो तुम में सबसे ज़्यादा ख़ुदा से डरने वाला है" (४९:१३) यानी इन्सान पर इन्सान की बड़ाई सिर्फ़ पाकीज़ा चरित्र और अच्छे आचरण की बिना पर है, न कि रंग व नस्ल ज़ुबान या वतन की बिना पर। और

यह बड़ाई भी इस उद्देश्य के लिए नहीं है कि अच्छे चरित्र और आचरण के लोग दूसरे इन्सानों पर अपनी बड़ाई जताएं, क्योंकि बड़ाई जताना स्वयं में एक बुराई है, जिसको कोई धर्मपरायण और परहेज़गार आदमी नहीं कर सकता और यह इस उद्देश्य के लिए भी नहीं है कि नेक आदमी के अधिकार बुरे आदमियों के अधिकारों से बढ़कर हों, या उसके अधिकार उनसे ज़्यादा हों, क्योंकि यह इन्सानी बराबरी के ख़िलाफ़ है, जिसको इस आलेख के शुरू में नियम के तौर पर बयान किया गया है। यह बड़ाई और इज़्ज़त अस्ल में इस वजह से है कि नेकी और भलाई नैतिक-दृष्टि से बुराई के

मुक़ाबले में बहरहाल श्रेष्ठ है। इस बात को अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) ने एक हदीस में बयान फ़रमाया है किः– "किसी अरबी को ग़ैर-अरबी पर कोई बड़ाई नहीं है, न ग़ैर-अरबी को अरबी पर कोई बड़ाई है। न गोरे को काले पर और न काले को गोरे पर कोई बड़ाई है। तुम सब आदम (अलैहिस्सलाम) की औलाद हो और आदम मिट्टी से बनाए गए थे।" इस तरह इस्लाम ने तमाम मानव-जाति में बराबरी क़ायम की और रंग, नस्ल भाषा और राष्ट्र के आधार पर सारे भेद-भावों की जड़ काट दी। इस्लाम के नज़दीक यह हक़ इन्सान को इन्सान होने की हैसियत से हासिल है कि उसके

साथ उसकी खाल के रंग या उसकी पैदाइश की जगह या उसकी जन्म देने वाली नस्ल व क़ौम के आधार पर कोई भेदभाव न बरता जाए। उसे दूसरे के मुक़ाबले में नीच न ठहराया जाए। और उसके अधिकार दूसरों से कमतर न रखे जाएं। अमेरिका के अफ्रीक़ी नस्ल के लोगों का मशहूर लीडर 'मैल्कम एक्स' जो काली नस्ल के बाशिन्दों की हिमायत में सफेद नस्ल वालों के ख़िलाफ़ सख़्त कश्मकश करता रहा था, मुसलमान होने के बाद जब हज के लिए गया और वहां उसने देखा कि एशिया, अफ़्रीक़ा, यूरोप, अमेरिका यानी हर जगह के और हर रंग व नस्ल के मुसलमान एक ही

लिबास में एक ख़ुदा के घर की तरफ़ चले जा रहे हैं, एक ही घर की परिक्रमा कर रहे हैं, एक ही साथ नमाज़ पढ़ रहे हैं और उनमें किसी तरह का भेदभाव नहीं है तो वह पुकार उठा कि यह है रंग और नस्ल के मसले का हल, न कि वह जो हम अमेरिका में अब तक करते रहे हैं। आज ख़ुद ग़ैर-मुस्लिम विचारक भी, जो अंधे भेदभाव और पक्षपात में ग्रस्त नहीं हैं, यह मानते हैं कि इस मसले को जिस कामियाबी के साथ इस्लाम ने हल किया है, कोई दूसरा मज़हब और तरीक़ा हल नहीं कर सका है।

11. भलाई के कामों में हर एक से सहयोग और बुराई में किसी से सहयोग नहीं

इस्लाम ने एक बड़ा अहम उसूल यह पेश किया है कि "नेकी और परहेज़गारी में सहयोग करो। बदी और गुनाह के मामले में सहयोग न करो" (५:२)। इसके माने यह है कि जो आदमी भलाई और ईशपरायणता का काम करे, यह देखे बग़ैर कि वह उत्तर का रहने वाला हो या दक्षिण का, वह यह हक़ रखता है कि हम उससे सहयोग करेंगे। इसके विपरीत जो आदमी बदी और ज़्यादती का काम करे, चाहे वह हमारा क़रीबी पड़ोसी या रिश्तेदार ही क्यों न हो, उसका न यह हक़ है कि रिश्तेदारी,

नस्ल, वतन या भाषा और जातीयता के नाम पर वह हमारा सहयोग मांगे, न उसे हम से यह उम्मीद रखनी चाहिए कि हम उससे सहयोग करेंगे। न हमारे लिए यह जायज़ है कि ऐसे किसी काम में उसके साथ सहयोग करें। बदकार हमारा भाई ही क्यों न हो, हमारा और उसका कोई साथ नहीं है। नेकी का काम करने वाला चाहे हम से कोई रिश्ता न रखता हो, हम उसके साथी और मददगार हैं, या कम से कम ख़ैरख़्वाह और शुभचिंतक तो ज़रूर ही हैं।

12. युद्ध के दौरान दुश्मनों के अधिकार के अन्तर्राष्ट्रीय 'क़ानून' की हैसियत

इससे पहले कि इस्लामी राज्य के नागरिकों के हक़ और अधिकार बयान किया जाए, यह बताना ज़रूरी है कि दुश्मनों के क्या अधिकार इस्लाम ने बताए हैं। युद्ध के शिष्टाचार की कल्पना से दुनिया बिल्कुल बेख़बर थी। पश्चिमी दुनिया इस कल्पना से पहली बार सत्रहवीं सदी के विचारक ग्रोशियूस (Grotius) के ज़रिये से परिचित हुई। मगर अमली तौर पर अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध नियम उन्नीसवीं सदी के मध्य में बनाना शुरू हुए। इससे पहले युद्ध के शिष्टाचार का कोई ख़्याल पश्चिम वालों के यहां नहीं पाया जाता था। जंग में हर तरह के जुल्म व सितम किए जाते थे और किसी तरह के अधिकार

जंग करने वाली क़ौम के नहीं माने जाते थे। उन्नीसवीं सदी में और उसके बाद से अब तक जो नियम भी बनाए गए हैं, उनकी अस्ल हैसियत क़ानून की नहीं, बल्कि संधि की सी है। उनको अन्तर्राष्ट्रीय क़ानून कहना हक़ीक़त में 'क़ानून' शब्द का ग़लत इस्तेमाल है। क्योंकि कोई क़ौम भी जंग में उस पर अमल करना अपने लिए ज़रूरी नहीं समझती। सिवाए इसके कि दूसरा भी उसकी पाबन्दी करे। दूसरे शब्दों में जंग के इन सभ्य निमयों में यह बात मान ली गयी है कि अगर हमारा दुश्मन उनका आदर करेगा तो हम भी करेंगे और अगर वह जंग के ज़ालिमाना तरीक़ों पर उतर

आएगा तो हम भी बे-रोक-टोक वही तरीक़े इस्तेमाल करेंगे। ज़ाहिर है कि इस चीज़ को क़ानून नहीं कहा जा सकता। यही वजह है कि हर जंग में इन तथाकथित अन्तर्राष्ट्रीय क़ायदों और नियमों की धज्जियां उड़ाई गईं और हर बार उन पर पुनर्विचार किया जाता रहा, और उन में कमी व बेशी होती रही।